# Assignment

Name = Nidhi Kumari

Roll no. = SKT / 19/18

Course = B.A (Hons.) Sanskrit

Year = 2nd

Semester = 4th

Subject = Sanskrit Meters And Music

Subject teacher = Dr. Kalpana Sharma

प्र०= टिप्पणी लिखिए :-

(क) मूर्च्छना →

" क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् ।
मूर्च्छनेत्युच्यते, ग्रामद्वये ता: सप्त सप्त च ॥"

अनुवाद - क्रम से सात स्वरों का आरोह और अवरोह मूर्च्छना है। और वे दो ग्रामों में सात-सात होती हैं।

ग्राम के लक्षण में उसे मूर्च्छनादि का आश्रय कहा जा चुका है इसलिए सबसे पहले मूर्च्छना से ही ग्रन्थकार ने शुरू किया है।

मतंग के अनुसार 'मूर्च्छना' शब्द की व्युत्पत्ति 'मूर्छ' धातु से है :- मोह और समुच्छ्राय (व्याप्त होना, वृद्धि)।
कल्लि० ने 'मूर्ज' धातु से व्युत्पत्ति दी है।
इस प्रकार मूर्च्छना शब्द 'मुर्छ' या 'मूर्छ' धातु से निष्पन्न होता है। इन धातुओं में विकल्प से 'च' कार होने पर 'मूर्च्छना' और न होने पर 'मूर्छना' बनता है।
कल्लि० के अनुसार धातु को मोहार्थक मानने पर मूर्च्छना

का अर्थ है — 'जिसके द्वारा श्रोता मोहित होते हैं', और समुच्चय अर्थ का ग्रहण करने पर अर्थ है - 'जिसके द्वारा राग व्याप्त होते हैं', अर्थात उभरते हैं।

ग्रन्थकार द्वारा मूर्च्छना लक्षण में प्रयुक्त 'क्रमात', 'सप्तानां' और 'आरोहश्चावरोहणं' पर टीका करते हुए कल्लि० ने यह स्पष्ट किया है कि कूटतानों से मूर्च्छना को अलग करने के लिए 'क्रमात' का प्रयोग किया है क्योंकि कूटतानों में व्युत्क्रम होता है, सीधा क्रम नहीं। 'सप्तानां' के द्वारा तानों का निरास किया है क्योंकि शुद्ध तानों में 5 या 6 स्वरों का प्रयोग होता है, 7 का नहीं। 'आरोहश्चावरोहणं' के द्वारा आरोही - अवरोही वर्ण और उन पर आधारित अलंकारों का निषेध किया है।

भरत के मूर्च्छना लक्षण में आरोह - अवरोह सम्मिलित नहीं है। मतंग ने मूर्च्छना और तान का भेद बताते समय मूर्च्छना में आरोह क्रम और तान में अवरोह क्रम कहा है।

(ख) सप्तस्वराः →

" श्रुतिभ्यः स्युः स्वराः षड्जर्षभगान्धारमध्यमाः ।
पञ्चमो धैवतश्चाथ निषाद इति सप्त ते ॥"

तेषां संज्ञाः सरिगमपधनीत्यपरा मताः ।

श्रुतियों के द्वारा स्वर होते हैं ; षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम और धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं। उनके स, रि, ग, म, प, ध, नि - ये अन्य संज्ञाएँ मानी गई हैं।

'श्रुतियों से स्वर होते हैं'- ग्रंथकार का यह कथन महत्वपूर्ण है और दूसरे शब्दों में मतंग के 'अभिव्यक्ति' के सिद्धान्त की स्वीकृति का सूचक है। श्रुतियों से स्वर कहने में यह अन्वित है कि ४, ३, २ आदि संख्या के श्रुतियों के समूह से विभिन्न स्वर व्यक्त होते हैं - मतंग ने कुछ पत्र सभी के समक्ष प्रस्तुत किए हैं, वे कुछ इस प्रकार हैं

(1) स्वर और श्रुति दोनों का ग्रहण एक ही इन्द्रिय - श्रवण - द्वारा होने के कारण दोनों में कोई पृथक् स्पर्श न होने से दोनों में जाति और व्यक्ति की तरह तादात्म्य है।

(2) दर्पण में चेहरे की तरह श्रुतियों में स्वर विवर्तित होते हैं।

(3) जैसे मिट्टी के पिण्ड, दण्ड आदि घट के कारण हैं उसी तरह श्रुतियाँ स्वर का कारण हैं।

(4) जैसे दूध - दही के रूप में परिणत होता है उसी तरह स्वर भी श्रुतियों का परिणाम है।

(5) अँधेरे में रखे घट आदि को दीपक जैसे अभिव्यक्त कर देता है उसी तरह श्रुतियों के द्वारा स्वर अभिव्यक्त होते हैं।

मतंग ने इनमें से पहले तीन का खंडन किया है अन्तिम दो - परिणाम और अभिव्यक्ति संबंधों को स्वीकार करके श्रुतियों के द्वारा स्वरों की अभिव्यक्ति पक्ष को ही अन्तिम रूप में स्वीकार किया है।

यहाँ यह स्पष्ट किया है कि - 'श्रुतियों से स्वर' का क्रम वैचारिक अथवा सैद्धान्तिक दृष्टि से तो

समीचीन है लेकिन अनुभूति का क्रम इसके विपरीत है क्योंकि श्रवण- प्रत्यक्ष स्वरों का ही होता है, श्रुतियों का नहीं।

* <u>षड्ज</u> ⇒ षड्ज स्वर को यह संज्ञा इसलिये दी गई है कि वह रि ग म प ध नि - इन 6 स्वरों का जनक है अथवा सप्तक के अंगरूप अन्य 6 स्वरों के दृवारा वह उत्पन्न अथवा प्रकाशित होता है अथवा नाक, कान, हृदय, तालु, जीभ और दाँत शरीर के 6 ध्वनि - उत्पादक अंगों से उत्पन्न होता है।

* <u>ऋषभ</u> ⇒ 'जाना' अर्थ वाली 'ऋष' धातु से बनने वाले ऋषभ शब्द में धातु के अर्थ के कारण यह अर्थ है कि जो हृदय में अन्य स्वरों के साथ 'जाता' है अर्थात् हृदय को तुरन्त प्रभावित करता है इसलिए ऋषभ कहलाता है। अथवा जैसे गायों के समूह में ऋषभ अर्थात् विशेष रूप से बलवान दिखाई देता है। उसी तरह स्वरों के समूह में ऋषभ स्वर बलवान होता है। अथवा ऋषभ साँड के समान नाद उत्पन्न करता है इसलिए वह ऋषभ स्वर है।

* गान्धार ⇒ 'धारण' अर्थ वाली 'धृ' धातु से 'गो' शब्द उपपद में होने पर गान्धार शब्द बनता है। 'गां धारयतीति गान्धारः' अर्थात 'गां' यानी गानात्मिका वाणी को धारण करता है इसलिए यह स्वर गान्धार कहलाता है।

→ गन्धर्वों के सुख का कारण होने की वजह से भी ये गान्धार कहलाता है।

* मध्यम ⇒ सात स्वरों के मध्य में रह कर स्वरों का मान (माप) करने के कारण मध्यम कहलाता है।

* पञ्चम ⇒ 'विस्तार' अर्थ वाली 'पच्' धातु और 'नापना' अर्थ वाली 'मि' धातु से मिलकर यह शब्द बनता है। अन्य स्वरों के विस्तार को नापता है इसलिए पञ्चम कहलाता है। प्रथम अपकर्ष में प्राप्त पंचम की श्रुति को 'प्रमाणश्रुति' कहा गया है।

→ स्वरों के क्रम में यह पाँचवें स्थान पर है इसलिए पञ्चम कहलाता है।

→ उच्चारण स्थानों में पाँचवें स्थान से उत्पन्न होता है इसलिए पञ्चम संज्ञा है।

* <u>धैवत</u> ⇒ 'धीवान्' अर्थात सूक्ष्म बुद्धि वाले व्यक्तियों के द्वारा सुना जाने के कारण धैवत कहलाता है। मतंग ने इसका कारण दिया है कि यह स्वरों के सूक्ष्म तथ्यों की ओर संकेत करता है इसीलिए इसका नाम धैवत है।

→ उच्चारण स्थानों में से छठे स्थान ललाट में धारण होता है इसलिए धैवत कहलाता है।

* <u>निषाद</u> ⇒ 'गति' (जाना) अर्थ वाली 'षद्लृ' धातु से यह शब्द बनता है जिसका अर्थ है 'जिसमें पर्यवसित हो'। सप्तक का अन्तिम स्वर होने से अन्य स्वर इसमें पर्यवसित होते हैं इसलिए निषाद कहलाता है।

सिद्धान्त ने संगीतकार का वह अंश उद्धृत किया है जिसमें स्वरों की निरुक्ति दी गई है। यह अंश भी मतंग की पुष्टि करता है।

कल्लिनाथ ने इन सात स्वरों को शरीर के सात चक्रों से, सात धातुओं से उनका संबंध जोड़ने का प्रयास किया है। कल्लिनाथ का कहना है कि प्रयोग की सुविधा के लिए इन सात स्वरों के पहले अक्षर को लेकर इनका नाम

स, रि, ग, म, प, ध, नि रख लेते हैं। स्वरों के नाम बड़े होने के कारण उनके पहले अक्षर को लिया गया है परन्तु षडज, ऋषभ में ष, ऋ को न लेकर स, रि को लिया गया है। उसका कारण यह है कि ष, ऋ अपभ्रंश रूप में प्रचलित हुए हैं।

कल्लिनाथ ने मतंग के आधार पर मन्त्रशास्त्र के अनुसार स, रि, ग, म आदि नामों के बीज भी बताएँ हैं। मन्त्रशास्त्र में मन्त्रों के बीज बताने की परम्परा है जो देवी-देवताओं के वाचक माने गए हैं। किसी मन्त्र का बीज कहने का तात्पर्य है कि उस बीज के वाचक देवता की उपासना उस मन्त्र में है। 'अ' विष्णु का और 'इ' शक्ति का वाचक माना गया है। सात स्वर नामों में से 'रि' और 'नि' में इकार है और शेष सब में आकार है इसलिए पूर्वोक्त दो स्वरों को शक्ति का प्रतीक मान कर उनको 'कामबीज' कहा है और स्वरों में 'अ' होने से वे विष्णु के प्रतीक रूप में 'हरिबीज' से युक्त कहे गए हैं।

प्र०- छन्दशास्त्र पर विस्तार से निबंध लिखिए ?

उ०- 'छन्दः पादौ तु वेदस्य' अर्थात छन्द वेदाङ्ग को वेद का पाद कहा गया है। जिस प्रकार पैर के बिना मनुष्य चलने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार छन्दोज्ञान के बिना वेद पंगु अर्थात लंगड़ा है। इसका तात्पर्य यह है कि छन्दों के सम्यक ज्ञान के बिना वैदिक मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं हो सकता है। अतः वेद मंत्रों के सम्यक उच्चारण व भाव बोधन हेतु छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में महर्षि कात्यायन ने स्पष्ट कहा है कि जो व्यक्ति छन्द, ऋषि तथा देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन, अध्यापन, यजन तथा याजन करता है, उसका प्रत्येक कार्य निष्फल ही होता है।

"यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो-दैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पात्यते या पापीयान् भवति"।

निरुक्तकार यास्कानुसार 'छन्द' शब्द की व्युत्पत्ति 'छद' धातु से हुई है, जिसका अर्थ होता है- आच्छादित करना। अतः छन्द वेदों को आच्छादित करते हैं, अतः 'छन्द' कहलाते हैं- 'छन्दांसि छादनात्'। इसी अर्थ की पुष्टि में दुर्गाचार्य ने

कहा है - "यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यतः तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्"। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है 'छन्दों से अपने शरीर को आच्छादित करके देवता अग्नि के पास गए, अतः इन्हें छन्द कहते हैं। निघण्टु के अनुसार 'छद' धातु का अर्थ स्तुति, पूजा और प्रसन्न करना है। वेदों में गायत्री आदि छन्दों में मन्त्रों अथवा ऋचाओं के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति की गई है।

वैदिक काल के सीमित छन्दों का संस्कृत में बहुत विकास हुआ, अनेक नए-नए छन्द आए और उन्हें सुघटित करने के लिए गणों तथा यति का निर्धारण हुआ। वैदिक अनुष्टुप, त्रिष्टुप तथा जगती छन्द भी व्यवस्थित तथा सुडौल बन गए। गण तीन वर्णों का होता है, गुरु-लघु के निश्चित क्रम से मगण (SSS), यगण (ISS), रगण (SIS), सगण (IIS), तगण (SSI), जगण (ISI), भगण (SII), नगण (III), ये 8 गण होते हैं - इनके द्वारा ही सभी वर्णवृत्तों को नियन्त्रित किया जाता है। 'यति' या विराम किसी अक्षर पर रुकने का नाम है। गणों की व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए भी यति पर शब्द की समाप्ति आवश्यक है, अन्यथा 'यतिभङ्ग' दोष होता है।

छन्द के 4 चरण अनिवार्य हैं जो सभी सम या अर्धसम या विषम भी हो सकते हैं। अधिसंख्यक छन्द समवृत्त ही हैं। कुछ छन्दों में (जैसे - आर्या) मात्राओं की गणना होती है, यद्यपि गुरु - लघु या गण का बन्धन वहाँ भी रहता है। इस प्रकार वैदिक छन्दों से भिन्न धरातल पर विकसित होने से छन्दोग्रन्थों की भी रचना अनिवार्य हो गई। अनुष्टुप सबसे छोटा छन्द है, स्रग्धरा सबसे बड़ा। विषय की लम्बाई के अनुरूप इनका उपयोग कविगण करते रहे हैं। क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' में विषय - वस्तु का छन्द के साथ सम्बन्ध दिखाया है।

प्रथम छन्दः शास्त्रकार पिङ्गलाचार्य के नाम पर इस शास्त्र को भी 'पिङ्गलशास्त्र' कहा गया, इसमें छन्दों के लक्षण के अतिरिक्त 'प्रस्तार' - जैसे गणित विषय भी आए। छन्दःशास्त्र गणित पर आधारित है वाक्य में प्रयुक्त अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा - गणना तथा यति - गति से सम्बन्ध विशिष्ट नियमों से नियोजित रचना छन्द कहलाती है। सूत्रशैली में आचार्य पिङ्गल द्वारा रचित छन्दःशास्त्र को बिना भाष्य के समझना एवं पढ़ना अत्यन्त कठिन है। पिङ्गलछन्दःसूत्र के रचयिता आचार्य पिङ्गल ने समस्त छन्दों के नाम के मूल

कर्ता के रूप में भगवान शिव के नाम का उल्लेख किया है।

छन्द पर प्राचीनतम ग्रन्थ 'पिङ्गलकृत' छन्दः सूत्र है। इसमें 8 अध्याय हैं, सूत्रों की कुल संख्या 307 है। आरम्भ के तीन अध्याय तथा चतुर्थ अध्याय के सप्तम सूत्र तक वैदिक छन्दों का विवरण है; शेष भाग (211 सूत्र) में लौकिक छन्दों का विवरण है। चतुर्थाध्याय मात्रावृत्तों का है, अन्तिम तीन अध्याय वर्णवृत्त के त्रिविध छन्दों (सम, अर्धसम और विषम) का वर्णन करते हैं।

भरत के नाट्यशास्त्र के दो अध्यायों (15 तथा 16) में एवम् अग्निपुराण के आठ अध्यायों (327 से 335) में भी छन्दों का विवरण दिया गया है। जानाश्रयी छन्दोविचिति नामक सूत्रात्मक ग्रन्थ 600 ई० के आसपास लिखा गया। इसमें 6 अध्याय हैं जिनमें संज्ञा, विषमवृत्त, अर्धसमवृत्त, जाति (मात्रिक) छन्द एवं प्रस्तार का क्रमशः विवेचन है। यहाँ 8 के विपरीत 17 गण माने गए हैं यह पिङ्गल से भिन्नप्रस्थानक ग्रन्थ है। इसके लेखक 'जनाश्रय' उपाधिधारी राजा माधववर्मा थे।

संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त छन्दःशास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न विद्वानों के द्वारा बहुत सारे ग्रंथों की रचना

की गई। इनका विस्तृत विवरण तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा रहा है। प्रथम श्रेणी में वैदिक छन्दों से सम्बन्धित ग्रन्थों का, द्वितीय श्रेणी में लौकिक छन्दों से सम्बन्धित ग्रन्थों का तथा तृतीय श्रेणी में वैदिक और लौकिक दोनों छन्दों में से सम्बन्धित ग्रन्थों के विषय में बताया गया है। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले छन्दों को वैदिक छन्द कहते हैं। वैदिक छन्दों के प्रत्येक पाद में अक्षरों की संख्या गिनी जाती है, लौकिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले छन्द लौकिक छन्द कहलाते हैं।

Kalpana

23/25